मज़बूत लोकतंत्र में भारतीय न्यायपालिका की भूमिका

यह The Hindu में 29 अप्रैल को प्रकाशित आलेख An Ineffectual Angel का भावानुवाद है। इसमें बताया गया है कि भारत की न्यायपालिका के ऐसे शब्दाडंबरों का कोई अर्थ नहीं है, यदि वह उन मामलों से बच निकलने का प्रयास करती है, जो इससे लोकतंत्र के वृहद् सिद्धांतों को लागू करने की अपेक्षा करते हैं।

संदर्भ

एक औपनिवेशिक शासन से लोकतांत्रिक गणराज्य में बदलना भारतीय इतिहास की सबसे विलक्षण उपलब्धियों में से एक था। **ओर्नित शानी** ने अपनी पुस्तक **How India Became Democratic** में उन कठिन प्रयासों के बारे में जानकारी दी है जो भारत के पहले आम चुनाव के आयोजन के लिये किये गए थे। संविधान निर्माताओं ने एक झटके में संविधान में यह निर्धारित करके कि चुनाव सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर कराए जाएंगे, देश की आबादी को प्रजा (Subject) से नागरिक (Citizen) में बदल दिया। यह एक ऐसी उपलब्धि थी जिस पर कई लोगों को संदेह था कि ऐसा हो पाना संभव नहीं है, लेकिन इसकी सफलता पर हम सभी को गर्व होना चाहिये।

स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव

नागरिकों का मताधिकार इस उपलब्धि का मूल तत्त्व है। मत यानी वोट के माध्यम से ही लोकतांत्रिक वैधता का समय-समय पर नवीनीकरण होता है और गणतंत्र की नींव स्थिर बनी रहती है। किंतु केवल मतदान करना भर ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि यह मतदान एक स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव का हिस्सा होना चाहिये। इसे सुनिश्चित करने के लिये कई संस्थागत कारकों और परिस्थितियों का होना आवश्यक है तथा इन सबको साथ लेकर ही मतदाता द्वारा मतदान का अंतिम फर्ज़ पूरा होता है।

एक सार्थक गतिविधि बना रहे मतदान

देश के सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त मूल सिद्धांत को मान्यता दी है। समय के साथ विभिन्न निर्णयों के माध्यम से न्यायालय ने उन सक्षम स्थितियों का निर्धारण किया है जो सुनिश्चित करता है कि मतदान एक सार्थक गतिविधि बना रहे। जैसे- किसी भी नागरिक को मनमाने ढंग से **मतदान से वंचित नहीं किये जाने का अधिकार।** इसीलिये न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मतदान **संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए)** के तहत मिली मौलिक स्वतंत्रता है। मतदाताओं को कुछ बातें **जानने का अधिकार** (Right to Know) है। इसीलिये प्रत्याशियों द्वारा कुछ जानकारियों की घोषणा करना अनिवार्य है। इसके अलावा, गुप्त मतदान का अधिकार...और इसीलिये न्यायालय ने मतदान में NOTA विकल्प को शामिल करने का आदेश दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार यह दुहराया है कि निर्वाचन प्रक्रिया में जनता का विश्वास होना गणतंत्रात्मक लोकतंत्र के बने रहने के लिये महत्त्वपूर्ण है और यही वे संस्थागत सुरक्षा उपाय हैं जो समूहबद्ध होकर इसे सुनिश्चित करते हैं।

न्यायिक निष्क्रियता का मुद्दा

किसी भी अन्य प्रतिस्पर्द्धी प्रक्रिया की तरह इस प्रतिस्पर्द्धा के ढाँचे का गठन करने वाले बुनियादी नियमों को एक निष्पक्ष मध्यस्थ/पंच द्वारा लागू किया जाना चाहिये। यहीं स्वतंत्र न्यायपालिका की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है, जबकि लोकप्रिय धारणा के अनुसार न्यायालय की प्राथमिक भूमिका लोगों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करना है। लेकिन न्यायपालिका का इतना ही महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व यह भी है कि वह चुनावी प्रतिस्पर्द्धा के बुनियादी नियमों का अनुपालन सुनिश्चित कराए, जो कि स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव के लिये आवश्यक है। कुछ कारणों की वज़ह से यह कार्य राजनीतिज्ञों पर नहीं छोड़ा जा सकता और इसे न्यायपालिका द्वारा ही निष्पादित किया जाना चाहिये। इस प्रकार यह एक ऐसा विषय है जहाँ न्यायालयों को सामान्य से अधिक सतर्क रहना चाहिये क्योंकि यहाँ दाँव पर स्वयं लोकतंत्र की मूलभूत वैधता लगी होती है।

काले धन को बढ़ावा देता है चुनावी बॉण्ड

इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय न्यायालयों के हालिया निर्णय एवं आदेश, न्यायिक शब्दाडंबर और वास्तविक प्रवर्तन के बीच तारतम्य में कमी दिखाई देती है। सर्वप्रथम, जानने के अधिकार के संदर्भ में देखें तो पिछले वर्ष के पूर्वार्द्ध में **चुनावी बॉण्ड योजना** लागू की गई। अधिकांश लोगों का यह मानना है कि इसके ज़रिये सरकार ने काले धन को राजनीतिक दलों के पास और चुनाव में लाने की अनुमति दे दी। यह किसी से छिपा नहीं है कि चुनावी बॉण्ड योजना राजनीतिक दलों को असीमित और गुप्त दान लेने की अनुमति प्रदान करती है, जिसमें विशेष रूप से कॉर्पोरेट से प्राप्त दान शामिल है। इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय ने भी महत्त्वपूर्ण माना।

दरअसल, यह 'जानने के अधिकार' का स्पष्ट उल्लंघन है, क्योंकि मतदाताओं को इस सूचना से वंचित किया गया है कि उनका वोट मांगने वाले लोगों का वित्तपोषण कौन कर रहा है। चुनावी बॉण्ड योजना के लागू होते ही इसे न्यायालय में चुनौती दी गई, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने पहले तो इस पर सुनवाई को लटकाए रखा और फिर समय की कमी का हवाला देते हुए इसे चुनाव के बाद तक के लिये स्थगित कर दिया। इस अंतराल में चुनावी बॉण्ड के माध्यम से भारी मात्रा में अनाम धन जुटा लिया गया और इसका एक बड़ा हिस्सा सत्तारूढ़ दल को प्राप्त हुआ।

इस मुद्दे पर इसी वर्ष अप्रैल में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने अंतरिम आदेश में कहा कि सभी राजनीतिक दलों को चंदा देने से संबंधित चुनावी बॉण्ड पर रोक नहीं लगेगी। न्यायालय ने कहा कि ऐसे सभी दल, जिनको बॉण्ड के ज़रिये चंदा मिला है, वे सीलबंद कवर में चुनाव आयोग को इसका ब्योरा देंगे। केंद्र सरकार ने न्यायालय से आग्रह किया था कि वह चुनाव प्रक्रिया के दौरान चुनावी बॉण्ड के मुद्दे पर आदेश पारित न करे।

विफल होती गुप्त मतदान की अवधारणा

दूसरा विषय **गुप्त मतदान** का है। इन चुनावों के दौरान से सत्तारूढ़ दल की उम्मीदवार मेनका गांधी ने मुस्लिम मतदाताओं को धमकी दी कि वे उन्हें वोट दें वरना चुने जाने पर वह उनकी किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं करेंगी। उनके इस बयान पर देश में व्यापक प्रतिक्रिया देखने को मिली। वर्ष 2017 में मुकुलिका बनर्जी ने इस ओर ध्यान दिलाया था और अभी हाल में पत्रकार इशिता त्रिवेदी ने भी इस बात को दोहराया कि राजनीतिक दल अब बूथ विशेष के स्तर पर मतदान के परिणाम का पता लगाने में सक्षम हैं। इससे गुप्त मतदान की अवधारणा ही विफल हो गई है और मेनका गांधी द्वारा दी गई धमकी से निर्वाचन प्रक्रिया का निष्पक्ष रह पाना संभव नहीं है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2018 में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका दायर कर चुनाव में **टोटलाइज़र मशीन** के उपयोग का निर्देश देने का अनुरोध किया गया था जिससे मतपत्र की गोपनीयता बनी रहती, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने बिना सुनवाई किये ही इस याचिका को खारिज कर दिया।

मतदान की स्वतंत्रता का मुद्दा

तीसरा विषय मतदान की स्वतंत्रता का है। इन चुनावों में मतदाताओं की ऐसी कई शिकायतें सामने आईं जिनके नाम बिना किसी सूचना या सुनवाई के मतदाता सूची से हटा दिये गए थे। हालाँकि यह कोई नई बात भी नहीं है, यह समस्या लगभग हर चुनाव में देखने को मिलती है। पिछले वर्ष तेलंगाना विधानसभा चुनाव के समय भी यह मामला सामने आया था और निर्वाचन आयोग ने स्वीकार भी किया था कि व्यवस्था में यह समस्या विद्यमान है। तब आरोप लगाया गया था कि निर्वाचन आयोग मतदाता सूची को फूलप्रूफ बनाने के लिये **अनधिकृत रूप से आधार लिंकिंग** के साथ एक **अनऑडिटेड डी-डुप्लीकेशन सॉफ्टवेयर** का उपयोग कर रहा था, जिसने बड़ी संख्या में वास्तविक मतदाताओं के नाम भी मतदाता सूची से हटा दिये थे।

इसी के मद्देनज़र पिछले वर्ष के उत्तरार्द्ध में हैदराबाद के एक टेक्नोलॉजिस्ट ने उच्च न्यायालय में एक मामला दायर कर कहा कि निर्वाचन आयोग अपने **एलगोरिदम के सोर्स कोड** का खुलासा करे और इसे ऑडिट के लिये उपलब्ध कराए। कई माह गुज़र गए, आम चुनाव शुरू होकर समाप्त हो गए, लेकिन उच्च न्यायालय इस याचिका पर कोई निर्णय लेने में विफल रहा।

निर्वाचन प्रक्रिया पर सार्वजनिक विश्वास की बहाली

अंतिम विषय के रूप में हम निर्वाचन प्रक्रिया पर सार्वजनिक विश्वास के मुद्दे पर विचार करेंगे। मार्च के मध्य में 20 विपक्षी दलों ने सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की थी, जिसमें EVM के उपयोग के बारे में कुछ आशंकाएँ जताई गई थीं। याचिका में अनुरोध यह किया गया था कि **वोटर वेरिफाइड पेपर ऑडिट ट्रेल (VVPAT)** मशीनों का उपयोग करके मतदान में इस्तेमाल होने वाली 50 प्रतिशत EVM का सत्यापन किया जाए। इस संबंध में निर्वाचन आयोग की एकमात्र आपत्ति यह थी कि इससे मतगणना में काफी समय लग जाएगा और पूरी मतगणना करने में छह दिन तक का समय लग सकता है। लेकिन जब हम सात चरणों में डेढ़ माह तक चले चुनावों के संदर्भ में इसे देखें तो **सार्वजनिक विश्वास की बहाली** के लिये छह और दिनों का विस्तार कोई बड़ा मुद्दा नहीं था। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया और बिना किसी विस्तृत तर्क के केवल प्रति निर्वाचन क्षेत्र EVM सत्यापन की संख्या को 1 से बढ़ाकर 5 करने का निर्देश दिया।

हम कह सकते हैं कि विगत वर्षों में कई मौकों पर सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय लोकतंत्र की गरिमा, स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों में वोट के महत्त्व के बारे में कई आदेश दिये हैं। इनके परिप्रेक्ष्य में देखें तो लगता है कि हमारी न्यायपालिका काफी मुखर है। बेशक हमारा लोकतंत्र एक उपलब्धि है जिस पर गर्व किया जा सकता है, लेकिन लोकतंत्र स्वयं ही जीवंत नहीं रह सकता। यदि इसे लेकर कोई भी संदेह उठता है तो कार्यपालिका और न्यायपालिका दोनों का यह फ़र्ज़ है कि उसका तुरंत निवारण किया किया जाए। लेकिन देखने में आया है कि पिछले कुछ वर्षों से मतदाताओं के जानने के अधिकार, गुप्त मतदान और वोट देने की स्वतंत्रता को बेहद कम महत्त्व दिया गया है...और यही कारण है कि इससे चुनाव की स्वतंत्रता और निष्पक्षता पर संदेह उत्पन्न हुआ है।

ऐसे किसी भी अवसर पर जब भी मामला न्यायालय के समक्ष लाया गया तो उसके समाधान के बजाय इसे टालने की प्रवृत्ति ही अधिक दिखाई दी है। इससे तो

यही प्रतीत होता है कि न्यायालय के पास बातें तो बहुत हैं, लेकिन बड़े बदलावों को लेकर वह बहुत उत्सुक नहीं है।

अभ्यास प्रश्न: "लोकतंत्र में लोगों का विश्वास बनाए रखने की ज़िम्मेदारी न्यायपालिका और कार्यपालिका दोनों की है।" ठोस तर्कों सहित कथन की विवेचना करें।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/an-ineffective-angel